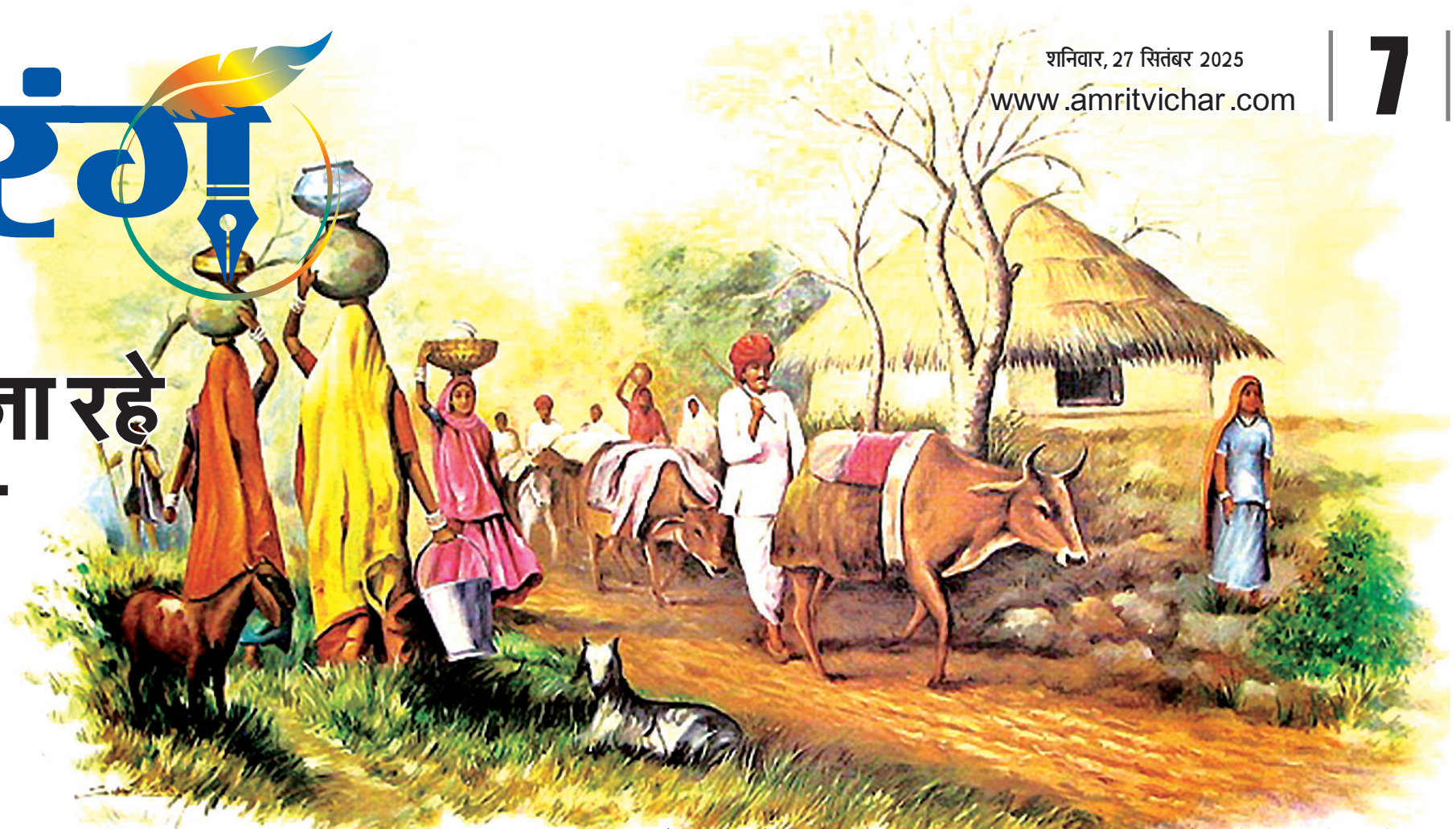

गांव अब खोते जा रहे हैं अपनी पहचान

प्राचीन काल से लेकर अंग्रेजों के आगमन तक अपनी सादगी, साफगोई, भोलापन और अपनी भलमनसाहत के लिए साहित्यिक कृतियों में बहुचर्चित और सुविख्यात हमारे गांव हमारे देश की हर शासन व्यवस्था की मौलिक, प्राथमिक तथा आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर इकाई रहे हैं। इसका अपवाद पश्चिमोत्तर भारत में सिंधु और रावी नदी के तट पर सुविकसित अबसे साढ़े चार हजार साल पुरानी कांस्ययुगीन सिंधु घाटी सभ्यता रही हैं, जो पूर्णतः नगरीय सभ्यता थी। हालांकि इसकी उत्तरवर्ती वैदिक सभ्यता पूरी तरह से ग्रामीण सभ्यता थी। ध्यातव्य हो कि पूर्णतः ग्रामीण सभ्यता और संस्कृति के रूप विख्यात वैदिक काल में ही भारतीय ज्ञन-विज्ञन और आध्यात्म के महान ग्रंथों वेदों, अरण्यको और भारतीय आध्यात्मिकता, तार्किकता, दार्शनिकता और बौद्धिकता की पराकाष्ठा को स्पर्श करने वाले उपनिषदों की रचना की गई। यह तथ्य उन शहरी और कस्बाई मानसिकता से ग्रसित और बुरी तरह कुंठित लोगों के लिए चिंतनीय और विचारणीय है, जो गांवों में गुजर बसर करने वालों को अनपढ़, असभ्य, गंवार, अशिक्षित और जाहिल समझते हैं। वैदिक काल से लेकर मुगलों के शासनकाल तक लगभग संपूर्ण उत्तर भारतीय शासकों के समय लगभग समस्त भारतीय गांव शासन व्यवस्था की प्राथमिक मौलिक और अक्क्षुण ईकाई रहे हैं।

उत्तर भारत की तरह सुदूर दक्षिण भारत में चोल, चालुक्य, सातवाहन और चेर राजाओं ने अपनी शासन व्यवस्था में आम लोगों को बेहतर सुविधाएं सुनिश्चित करने एवं ग्रामीण जन-जीवन में उन्नति और समृद्धि लाने के लिए उत्तम ग्रामीण शासन व्यवस्था का प्रबंधन किया था। वर्तमान दौर के मंत्रिपरिषदों की तर्ज पर ग्रामीण स्तर पर विभिन्न कार्यों को सुव्यवस्थित और सुचारू रूप से संपन्न और संचालित करने के लिए विभिन्न समितियों का गठन किया गया था। समितियों के माध्यम से दक्षिण भारतीय शासकों ने सर्वश्रेष्ठ ग्रामीण शासन व्यवस्था सुनिश्चित करने का प्रयास किया था। इतिहासकार मेगस्थनीज की प्रसिद्ध पुस्तक इंडिका में उत्तर भारत के विशेष रूप से मगध साम्राज्य के गांवों में पाई जाने वाली उत्तम ग्रामीण शासन व्यवस्था के साथ-साथ उत्तम उन्नत और समृद्ध ग्रामींण जन-जीवन का उल्लेख मिलता है। इंडिका में मगध साम्राज्य की उन्नति और समृद्धि के साथ-साथ उत्कृष्ट साहित्यिक और सांस्कृतिक हलचलों का भी पता चलता है। इस प्रकार ऐतिहासिक अवलोकन से पता चलता है कि संपूर्ण भारत में हर प्रकार की शासन प्रणालियों में उत्तम ग्रामीण शासन व्यवस्था पाई जाती रही है। हमारी शासन व्यवस्था की मौलिक स्वाभाविक और प्राथमिक ईकाई रहे गांव पहचान खोते जा रहे हैं। आपसी सहयोग, सहकार, समन्वय, साहचर्य, सामंजस्य और सदियों से हमारे चलन का हिस्सा रही है। संयुक्त परिवार प्रणाली के माध्यम जीवन जीने के आदती ग्रामीण लोकजीवन में अब एकाकी परिवार प्रणाली और एकाकी जीवनशैली तेजी से आगे बढ़ने लगी है। गावों में सदियों से प्रचलित समूहगत और सामूहिक जीवन पद्धति विलुप्त होती जा रही है। आधुनिकीकरण, तकनीकीकरण, शहरीकरण और सूचना प्रौद्योगिकी के साधनों के दुरूपयोग ने गांवों की आपसदारी को न केवल तहस-नहस किया हैं, बल्कि आधुनिकता की इस अंधी दौड़-भाग ने गांवों को आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक और प्राकृतिक रूप से प्रदूषित व कुपोषित किया है। तोता, मैना, कोयल, बुलबुल गौरेय्या और कौवे की बोलियां सुनने के लिए आज हमारे कान तरस जाते हैं। इसके साथ ही साथ गांवों के पर्यावरण और आबो-हवा में स्पष्ट बदलाव देखने को मिल सकता हैं। सूचना प्रौद्योगिकी के साधनों का बुलेट ट्रेन की रफ्तार से बढ़ता प्रयोग और हाईटेक होते जन-जीवन ने गांवों में मोबाइल कंपनियों के टावरों की संख्या बढ़ा दी है। इन टावरों की तरंगों ने तमाम चहचहाती पक्षियों की जान ले ली। अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भारतीय गांव अपनी सहज-सरल आवश्यकताओं के लिए पूरी तरह आत्मनिर्भर थे। अंग्रेजों ने अपनी साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं और संपूर्ण भारत को बाजार बनाने की मंशा से गांवों की सदियों पुरानी आत्मनिर्भरता के साथ-साथ गांवों की स्वाभाविक सहजता भोलापन, भलमनसाहत और मौलिकता को तहस-नहस कर दिया। अग्रेंजों ने भारतीय ग्रामीण अर्थतंत्र और अर्थव्यवस्था के आधार स्तंभ रहे भारतीय लोगों की बहुविविध हुनरमंद दस्तकारी, परंपरागत कुशल शिल्पकारी, हुनर और हाथों की जादूगरी से लबरेज हस्तकला को छिन्न-भिन्न कर दिया। स्वाधीनता उपरांत भारतीय गांवों को फिर से आत्मनिर्भर बनाने के लिए सरकारी और गैर-सरकारी स्तर पर अनगिनत प्रयास किए गए, परंतु तमाम प्रयासों और प्रयत्नों के बावजूद आज भी हमारे गांव राजधानियों और चमचमाते शहरों की अनुषंगी पूरक और पराश्रित अर्थव्यवस्था के रूप में जीने के लिए अभिशप्त हैं। शहरों और राजधानियों को चमकाने के लिए सारा संसाधन उपलब्ध कराने वाले गांव आज बदहाली और बदत्तरी के शिकार हैं। गावों में गुजर-बसर करने वाले लोगों की आजीविका का साधन आज भी खेती-किसानी और खेती-किसानी पर आधारित लघु कुटीर उद्योग हैं। इसलिए खेती-किसानी को लाभकारी स्थिति में पहुंचाने के लिए व्यावसायिक स्वरूप प्रदान किया जाए तो आज फिर से गांव आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो सकते हैं।

गांवों को फिर से सुसज्जित करने के लिए गांवों की प्राकृतिक और स्वाभाविक बुनावट व सजावट की तरफ लौटना होगा। गावों में फिर से साक्षात सहकारी और जिंदा संवाद कायम कर गांवों की मौलिक पहचान फिर से वापस लाई जा सकती है। बाजारवादी चकाचौंध और लगातार विज्ञापनों के शोर ने गंवई व्यंजनों की सुगंध और स्वाद को न केवल क्रूरता से कुचल दिया है, बल्कि हमारे खान-पान की पौष्टिक और प्रचलित परंपरा से हमको बहुत दूर कर दिया हैं। गुड़ भेली से तरह-तरह की बनी मिठाइयों खाद्य और पेय पदार्थों का स्थान पेप्सी, कोका-कोला जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के पेय और खाद्य पदार्थों ने ले लिया है। भारतीय गांवों की मौलिक पहचान पर फिर से विचार करने की आवश्यकता है। जनमानस में गंगा को बचाने के लिए जो तड़प और बेचैनी पाई जाती है उसी तरह की तड़प और बेचैनी गांवों को बचाने के लिए जनमानस के हृदय में पैदा करने की आवश्यकता है।

लेखक
मनोज कुमार सिंह

स्वर्ग के करीब की एक जगह : त्रियुंड

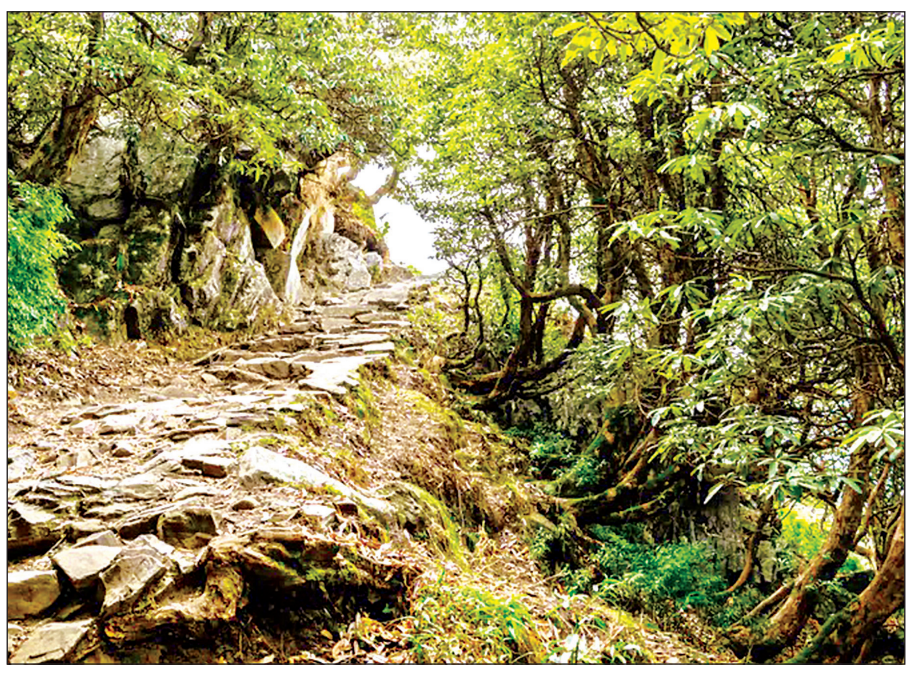

दूर किसी मैदानी शहर से किसी पहाड़ी शहर तक आना, आरामदायक होटल में रुकना, कुछ खास जगहों को देखना और फिर वापस लौट जाना। हम में से अधिकतर लोगों का घूमने का प्लान यही होता है, लेकिन कुछ हम जैसे भी होते हैं, जिनके लिए घूमने का मतलब है हर पल को जीना, उस जगह के जर्रे-जर्रे को महसूस करना और एडवेंचर ही जिंदगी है। आप भी एडवेंचर के शौकीन हैं और प्रकृति को करीब से महसूस करना चाहते हैं तो बस बैग पैक करिए और निकल पड़िए त्रियुंड ट्रैकिंग के लिए।

मार्च से जून और सितंबर से नवंबर तक त्रियुंड यात्रा के लिए सबसे उपयुक्त समय है। मैं अपने मित्र के साथ जब हिमाचल के खूबसूरत शहर मैक्लोडगंज पहुंचा तो चारों तरफ मनमोहक नजारे थे। आप इस यात्रा में मैक्लोडगंज को बेस कैंप की तरह इस्तेमाल कर सकते हैं। हमने शाम को वहीं एक ट्रैवल एजेंट से त्रियुंड में रहने के लिए टेंट बुक कर लिया। टेंट का किराया एक हजार रुपये प्रति व्यक्ति था, जिसमें रात का खाना और सुबह का नाश्ता भी शामिल था। मैक्लोडगंज से करीब चार किलोमीटर ऊपर है गोलू मंदिर यानी वो जगह, जहां से कोई वाहन आगे नहीं जा सकता। त्रियुंड की असली यात्रा यहीं से शुरू होती है। यहीं पुलिस का एक पिकेट है, जहां ऊपर चढ़ने से पहले आपको रजिस्ट्रेशन करवाना होता है। यह औपचारिकता पूरी करके हमने त्रियुंड की तरफ कदम बढ़ाए।

घड़ी बता रही थी कि दोपहर के ग्यारह बजने वाले हैं। सामने था पथरीला और जोखिम भरा रास्ता न कोई सड़क, बस दोनों तरफ पेड़ों से ढकी पगडंडी। शुरुआत में भरपूर जोश था इसलिए कदम तेजी से चल रहे थे, लेकिन कुछ ही मिनटों में हकीकत समझ आ गई। तेज धूप, बिना अभ्यास की चढ़ाई और तेज रफ्तार का असर। नतीजा, हमें पांच मिनट में ही पहला स्टॉप लेना पड़ा। फिर तय किया कि अब धीरे-धीरे चलेंगे। करीब एक घंटे बाद लगा जैसे पहाड़ ने हमसे दोस्ती कर ली हो। तेज धूप ठंडी हवा में बदल गई। नीचे मठों से आती घंटियों की आवाज एक प्यारी धुन-सी बन गई। हमारा बदन अब हमारे इरादों का साथ देने लगा। धीरे-धीरे प्रकृति का घूंघट उठने लगा और हम महसूस करने लगे एक नई और अनदेखी दुनिया को।

कहीं रास्ते का नामोनिशान नहीं था तो कहीं चट्टानों के बीच से राह खोजनी पड़ी। कहीं जंगली फूलों की खुशबू हमें अपनी ओर बुला रही थी तो कहीं डरावनी खाई थी। हरे-भरे मैदान मिले तो कुछ सहमी-सफेद भेड़ें हमारा स्वागत करती दिखीं। कभी सहयात्रियों का कोई झुंड दोस्त बन रहा था। इस बीच हम पहुंच गए "मैजिक व्यू कैफे" त्रियुंड ट्रैक का एक अहम पड़ाव।

थोड़ा आगे बढ़ते ही मौसम खुशगवार हो गया, लेकिन कुछ कदमों बाद बारिश ने हमें तरबतर कर दिया। ठंड काफी बढ़ गई थी। अब मुझे अपनी ऊनी टी-शर्ट का महत्व समझ आने लगा। कुछ दूरी पर आसमान से ओले गिरने लगे। हाथ-पांव ठंड से कांप रहे थे। तभी एक छोटी-सी दुकान दिखी और हम वहां जाकर छिप गए। त्रियुंड का अंतिम एक किलोमीटर ट्रैकिंग सबसे थकाने वाला है। इसमें करीब 22 खतरनाक मोड़ हैं। यहां तक पहुंचते-पहुंचते ऑक्सीजन भी कम होने लगती है, जिससे सांसें तेजी से फूलने लगती हैं। मैंने अपनी बोतल में बचे पानी का आखिरी घूंट पिया और साथी का हाथ पकड़कर सामने की चट्टान पार की। हमारे सामने हरा-भरा मैदान था, जो जैसे हमारा स्वागत कर रहा हो। यही तो हमारी मंजिल थी, हम त्रियुंड पहुंच चुके थे।

इस पड़ाव को पार करने के बाद जो दृश्य सामने था, वो बेमिसाल था। हमारे सामने फैला था बड़ा मैदान, जिस पर मानो हरी घास की कालीन बिछी हो। यहां-वहां रंग-बिरंगे टेंट चमक रहे थे। सामने खड़ा था धवल सफेद बर्फ से ढका हिमालय (धौलाधार पर्वत श्रृंखला)। हमारी सारी थकान न जाने कहां गुम हो गई थी। मैं अपनी जिंदगी की सबसे खूबसूरत जगहों में से एक का दीदार कर रहा था। जल्द ही हमने अपने लिए एक टेंट लगवा लिया। मैदान के अंतिम छोर पर, ताकि हिमालय का दृश्य बिना किसी रुकावट के सामने हो। टेंट छोटा था, लेकिन काम चल सकता था। कभी चारागाह रहा त्रियुंड अब बेहद रौनक से भरा था। सूरज ढलने ही वाला था और मौसम में काफी ठंडक थी। कई एकड़ में फैले मैदान में हर तरफ बस और बस प्रकृति थी।

मैदान के अंतिम सिरे पर पड़ी एक शिला पर बैठकर मैं विराट हिमालय को निहार रहा था। ठंडी घास पर रखे मेरे पैर जैसे हिमालय को छूने को मचल रहे थे। धीरे-धीरे हिमालय सूरज को अपनी गोद में ले रहा था और कुछ देर के लिए सफेद हिमालय के रंग बदलते रहे। सचमुच यह अद्भुत नज़ारा था। इतना कि मुझे तस्वीर लेना भी याद नहीं रहा। यह वो खूबसूरती थी, जिसके बारे में शायद ही आपने कभी कल्पना की हो। हल्की-हल्की ठंडी हवा बालों और चेहरे को जैसे किसी अपने की तरह सहला रही थी। मुझे लग रहा था कुछ जगहें देखने से ज्यादा महसूस करने के लिए होती हैं, जैसे त्रियुंड।

शाम के सात बज चुके थे। त्रियुंड में घिरते अंधेरे ने रात होने की दस्तक दी। दुनियादारी से परे एक खामोश और सुनहरी-सी रात थी। यहां की कुछ दुकानों में लालटेनें जल रही थीं या कहीं-कहीं टेंट में हल्की-सी टॉर्च की रोशनी थी बस। अंधेरा गहरा चुका था। जल्द ही अलग-अलग देशों और कोनों से आए लोग दोस्त बन गए। हमने साथ में ही डिनर किया। भूख इतनी ज्यादा थी कि उस वक्त मिला दाल-चावल-राजमा बेहद स्वादिष्ट लगा। थोड़ी देर बाद हम अपने कैंप की तरफ लौट आए।

मैं सुबह साढ़े चार बजे ही टेंट से बाहर निकल आया। एक मासूम सी सुबह हमारा स्वागत कर रही थी। सूरज धीरे-धीरे ऊपर आ रहा था। चारों तरफ खामोशी थी। बर्फीले बादल पास से गुजर रहे थे। ठंड और बढ़ गई थी। शायद मैं उस मैदान में पहला इंसान था जो उस समय टेंट से बाहर खड़ा था। मैं उस पल के हर लम्हे को अपने अंदर समेट लेना चाहता था। दिल कह रहा था- काश, वक्त थोड़ा और रुक जाए, लेकिन 'काश' हमेशा एक खतरनाक शब्द होता है। वापस लौटते समय मेरे पास थे, उस खूबसूरत जगह पर बिताए गए शानदार पल।

लेखक
मृदुल कपिल

किस्सा रहस्य

कैनवास की मोनालिसा

मनीष को अपनी दुकान में समय से पहुंचना होता था। आज सुबह से बारिश होने के कारण उसे दुकान के लिए निकलने में देर हो गई। वह सोच रहा था कि दुकान अभी तक बंद होगी। रामप्रसाद तो अभी पहुंचा ही नहीं होगा। अतः उसने मोबाइल से रामप्रसाद से संपर्क किया तो पता चला कि वह दुकान में मौजूद है। यह सुनकर उसे घोर ताज्जुब हुआ कि इतनी बरसात में वह समय पर कैसे पहुंच गया? वह काम पर सदा देर से आता था, जिसके लिए वह कई बार झिड़कियां सुन चुका था और मनीष उसे हटाने का भी निर्णय ले चुका था। वह दुकान में पहुंचा तो उसने देखा कि दुकान की अच्छी तरह सफाई हो चुकी थी। दुकान में कोई ग्राहक नहीं था और रामप्रसाद स्टूल पर बैठा ऊंघ रहा था। अपनी कुर्सी पर बैठते हुए मनीष ने उससे पूछा, "रामप्रसाद! मुझे यह बताओ कि पहले तो तुम हमेशा लेट से आते थे, लेकिन आजकल इतनी जल्दी कैसे आ रहे हो? बरसात में प्रायः लोगों को अपने कार्यस्थल पर पहुंचने में देर हो जाती है। तुम्हारे सवेरे पहुंचने का क्या कारण है?" यह सुनकर रामप्रसाद ने कहा , "मालिक! क्या बताऊं? जब बारिश होती है तो मेरी छत टपकने लगती है और मैं रात-भर बैठकर सवेरा करता हूं। कमरे में चारों ओर सीलन भरी हुई है। इसीलिए सवेरे उठकर चल देता हूं। यहां रहता हूं ,तो कम-से-कम भींगता तो नहीं हूं।"

अंजना वर्मा

यूं तो गाहे-बगाहे अपने अगल-बगल मैंने रेल से कई यात्राएं की है, लेकिन उन यात्राओं की दूरी ज्यादा से ज्यादा बीस से तीस किलोमीटर तक ही रही है। कभी कोई लंबी रेलयात्रा नहीं की। इसलिए इन छोटी रेल यात्राओं को मैं अपनी मुकम्मल रेलयात्रा नहीं कह सकता। हां! सन 2018 की गंभीर बीमारी की परिस्थितियों ने मुझे पहली बार एक मुकम्मल और पूर्ण रेलयात्रा कराई। इस रेलयात्रा को ही मैं अपनी सार्वकालिक व पूर्ण रेलयात्रा मानता हूं। मुंबई से लौटते समय ज्योहीं रेल ने पटरियों पे चलना और दौड़ना शुरू किया तो मुझे ऐसा लगा कि जैसे मुझे दुनिया जहान की सारी खुशियां मिल गईं हों। ऐसा नहीं की मुंबई जैसे महानगर और अर्थ की राजधानी में हमारे वृहद उत्तर प्रदेश जैसे राज्य का जौनपुर जैसा जिला अनुपस्थित हो। यह सच है कि मेरे बीमार होने की दशा में इलाज के मामले में मुंबई जौनपुर से कहीं ज्यादा बेहतर और सर्वोत्कृष्ट रहा, लेकिन हम संवेदनशील कलम वाले न जाने क्यों जीवन की मशीनी आपाधापी और इतने बड़े-बड़े कंक्रीट के जंगल से अपनी संवेदना बैठा नहीं पाते। वैसे भी मुंबई प्रवास के समय लगा कि इस महानगर में हमारे जनपद जौनपुर के हर घर से कोई न कोई अपने घर की रोटियां अपने प्रयास से चला पा रहे हैं। इतना ही नहीं, यहां पर हमारे जौनपुर के चंद लोग तो आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक कड़ी के वे मील के पत्थर है, जिसे मुंबई नकार नहीं सकती।

मेरी दवा व इलाज करवाने के बाद की वापसी केवल एक मरीज की वापसी नहीं थी, बल्कि मेरे अंदर के एक साहित्यकार की भी वापसी थी। जिसे मैंने अपने रेल

के डिब्बे में बखूबी महसूस किया, जो रेल का डिब्बा जाते वक्त नीरस व बेजान सा लगा था, वही रेल का डिब्बा घर वापसी के समय महज एक रेल का डिब्बा भर नहीं अपितु वह रेल का डिब्बा हमारे यहां का पूरा गांव सा लग रहा था। रेल के डिब्बे का गांव अपने में सब कुछ समेटे था। इसमें गांव की सरलता के साथ ही वह सोंधापन पन था, जिसके चलते हमारे जौनपुर का हर गांव जाना जाता है। इस रेल के डिब्बे से बातकर कुछ लोगों का खिलखिलाना जीवन की आयुर्वेदिक ऊर्जा का आभास करा रहा था। बीच में ग्रामीण तंज के अंदाज में कुछ राजनैतिक चर्चा-परिचर्चा इस यात्रा को और यादगार बना रहे थे। मैं खुद इस रेलयात्रा को किसी लेखक के यात्रा-वृत्तांत को जी रहा था।

हां इस रेलयात्रा में मेरे अंदर के लेखक को एक बात कचोट जरूर रही थी कि इस रेलयात्रा के कचोटपन की पात्र उस डिब्बे की खुली खिड़की के पास बैठी बिल्कुल शांत सी अपने अपने में खोई हुई सी लड़की, जिसके अंदर इस यात्रा का कहीं दूर-दूर तक कोई उल्लास नहीं दिख रहा था। वह जैसे अपनी किसी असहाय पीड़ा के आकंठ में डुबी बस बाहर देख रही थी। मुझे लगा कि शायद इसने रेलयात्रा नहीं कि, बल्कि इस पूरी रेलयात्रा में वह केवल अपने प्रश्नों का आत्ममंथन कर रही थी या उनके उत्तर को तलाश रही थी। मेरे इस प्रथम पूर्ण रेलयात्रा में वह नीली सलवार पहनी हुई लड़की चुभ रही थी और मुझे लगा कि यह अपने प्रेम के विश्वास की कस्तुरी किसी धोखेबाज को दे बैठी है। सच मैं कवि तो था, लेखक भी था, लेकिन किसी कैनवास का चित्रकार न था, लेकिन फिर भी ये लड़की मेरे रेलयात्रा के कैनवास की एक मोनालिसा बनके रह गई है।

लेखक
रंगनाथ द्विवेदी

बतकही

लेखक
शिवालिक अवस्थी

आज यदि कोई सबसे ज्यादा खुश है तो वह है कुमार साहब का बेटा रोहन। आखिर रोहन के चचेरे भाई की शादी जो है। रोहन को पहले दिन से ही उसके चाचा राजेश ने शादी का सारा तय कार्यक्रम कह सुनाया था ताकि रोहन को किसी भी कार्य में परेशानी न हो। रोहन भी पूरी जिम्मेदारी के साथ हर कार्य को पूरी तरह निभाने में मशगूल था। शाम को बारात जाने का समय हो गया। रोहन जल्दी तैयार हुआ और अपने ताया के लड़के योगेश के साथ अलग गाड़ी पर बारात के साथ चल पड़ा। बीच रास्ते में योगेश ने गाड़ी को कहीं ओर घुमा दिया और थोड़ी देर गाड़ी रोकने के बाद वह दुकान से शराब की बोतल ले आया। रोहन ने शराब पीने से इनकार किया और बोला कि चाचा जी ने मुझे बहुत काम सौंपे हैं मुझे उन्हें पूरा करना है, यह काम नहीं करना है, लेकिन योगेश ने रोहन को भी शराब पिलाई और खुद भी शराब का खूब सेवन किया। उन दोनों ने इतनी शराब पी कि कुछ भी होश न रहा। वे दोनों शादी की रस्में तक नहीं देख सके। उधर रोहन के पिता समझ चुके थे कि असली माजरा क्या है? लेकिन शादी के बीच में उन्होंने माहौल को संभाले रखा। रोहन को सुझाए गए सारे काम, उन्होंने ही किए। अगले दिन रोहन घर आ पहुंचा। उसके बाल बिखरे थे और कपड़े भी गंदे हो चुके थे। यह देखकर रोहन के पिता ने सबके सामने उसकी पिटाई की। रोहन, जो पहले पूरी जिम्मेदारी के साथ हर कार्य करने में मशगूल था, एक शराब ने उसका खूब मजाक बनाया। रोहन की तरह ऐसे कई लोग हैं, जो किसी भी समारोह का आनंद तो उठाना चाहते हैं, लेकिन शराब पीने की लत उन्हें सब कुछ भुला देती है। उन्हें यह ज्ञात नहीं रहता कि समारोह की स्मृतियां कितनी महत्वपूर्ण होती हैं, जो असल आनंद देती हैं।